International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(4): 170-172

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(4): 170-172
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 10-05-2018
Accepted: 29-06-2018

डॉ. गीता परिहार
एसो0 प्रोफेसर, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कालेज, मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ. गीता परिहार
एसो0 प्रोफेसर, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कालेज, मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

संस्कृत साहित्य में वर्णित शिक्षा का वर्तमान के संदर्भ में समीक्षा

डॉ. गीता परिहार

प्रस्तावना

परिवर्तनशीलता सृष्टि का नियम है किन्तु परिवर्तनशीलता को विकास नहीं कहा जा सकता है क्योंकि सृष्टि तो सदैव एक विकसित स्थिति में विद्यमान रहती है। आज का मानव आधुनिकता की दौड़ में बहुत आगे बढ़ता जा रहा है। ज्ञान–विज्ञान, तकनीक, औद्योगिक और आणविक दृष्टि से वह अपने को अतिविकसित अवस्था में पहुँचा हुआ मानता है किन्तु वस्तुतः यह भी परिवर्तन का ही एक रूप है।

सभी लोग विज्ञान की परिभाषा विशिष्ट ज्ञान या व्यवस्थित ज्ञान के रूप में करते है किन्तु मानव ने अपने इस विशिष्ट ज्ञान को स्थूल शरीर की सुविधाओं तक ही सीमित कर लिया है। आज विश्व में जितना वैज्ञानिक विकास दृष्टिगोचर हो रहा है वह मात्र स्थूल शरीर की सुख सुविधाओं तक ही सीमित है। सूक्ष्म तत्व के विकास की परवाह किये बिना भौतिकता के विकास को ही अपना विकास माना जा रहा है। जबकि वास्तविकता तो यह है कि मानव के द्वारा की जाने वाली इस भौतिक समृद्धि को विकास की अवस्था तो कहा ही नहीं जा सकता है संविकास तो दूर की बात है। आज की इस वैज्ञानिक उन्नति को संविकास की संज्ञा दी जाती है तो प्रदूषित होते हुए पर्यावरण की रक्षा आज मानव मात्र के लिये चिन्तनीय विषय न बना देता है।

आज आवश्यकता है ''मानवीय मूल्य'' को जगाने की अर्थात् ह्रास की स्थिति में पहुँची हुई मानवीय चेतना को जाग्रत करने की। कहने की आवश्यकता नहीं कि वह प्रथम वैज्ञानिक जिसने परमाणु बम को विकसित कर परीक्षण करने का निर्णय लिया था क्योंकि मानवीय चेतना का तात्पर्य उस चेतना से है जिसमें सत्ता का व्यापक हित निहित रहता है। नागासाकी हिरोशिमा में किये गये परमाणु बम परीक्षण के परिणाम आज भी वहाँ की प्रकृति को तथा प्रकृतिजन्य प्राणियों को झेलने पढ़ रहे हैं। मानवीय मूल्य में सदैव मानवता के हित साधन की बात निहित रहती है मानव मात्र की नहीं। आज इसी मानवीय मूल्य की शिक्षा देने के लिये जापान में हर बच्चे को हिरोशिमा ले जाकर दिखाया जाता है कि वैज्ञानिक प्रगति आज मानव जाति के लिये कितनी घातक बन गई है।

आज मानव भोगवादी संस्कृति को विकसित कर रहा है। वह आत्मकेन्द्रित होकर केवल अपनी बाह्य सुख सुविधाओं को ही ध्यान में रखता है। यदि वह आत्मिक विकास की बात को ध्यान में रखता तो मानव के द्वारा की जाने वाली प्रगति आज मानवता के लिये खतरा न बन गई होती। आज मानव अपने द्वारा की गई इस वैज्ञानिक उन्नति में तात्कालिक लाभ तो देख रहा है किन्तु आने वाले समय में आने वाली पीढ़ी को इसका क्या–क्या खमियाजा देना पड़ेगा, मानवीय चेतना से रहित होने के कारण वह इसके चिन्तन की आवश्यकता महसूस नहीं करता।

प्रस्तुत मानवीय मूल्य को बाल्यावस्था में विकसित होते हुए व्यक्तित्व का अंग बनाने का दायित्व शिक्षक का ही होता है। वैदिक ऋषियों ने भी सर्वव्यापी आत्मा (सर्वभूतेषुचात्मानम) की सत्ता का साक्षात्कार करके उसे लोककल्याण की दृष्टि से भारतीयों के बीच प्रचलित किया था, उसकी अनुभूति को सदा अक्षुण्ण रखने के लिये भारतीयों को सदैव प्रयासरत रहना चाहिये। श्रीमद्भगवदगीता में भी श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुए ''सर्वात्मवाद'' के सिद्धान्त की बात कही है और निष्काम भाव से प्राणिमात्र की सेवा करने की शिक्षा दी है। सभ्यता के प्रारम्भिक चरण में ही वैदिक ऋषि ईशावाष्योपनिषद में –

ईशावस्यमिदं सर्व यत्किंचजगत्यां जगत्
तेनत्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्'

का पावन आदेश देकर भारतीय जनों को अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में त्यागमय भोग वृत्ति के आदर्श को प्राथमिकता देते है आज भी उसी त्यागमय भोग–भावना की आवश्यकता है।

अतीतकाल में धन का संचय भी त्याग के लिए किया जाता था। वर्तमानकालिक वैज्ञानिक प्रवृत्ति प्रेय तो है किन्तु श्रेय की कसौटी पर भी खरी उतरेगी, इसमें सन्देह है।

शास्त्रों में 'शिक्षा को मनुष्य का नेत्र' कहा गया है। जिसके द्वारा वह जीवन दर्शन पाता है तथा सत्यासत्य का निर्णय करता है। वस्तुतः शिक्षा ही किसी भी राष्ट्र का मेरूदण्ड होती है। वह अतीत युग की उपलब्धियों तथा वर्तमान परिस्थितियों का सन्धि स्थल ही नहीं, एक ऐसा ज्ञानदीप भी है, जिसके देदीप्यमान प्रकाश में भविष्य की रूपरेखा भी प्रकाशित हो उठती है। मानव शरीर को अनुशासित करने का कार्य जैसे मस्तिष्क करता है ठीक उसी प्रकार सम्पूर्ण सत्ता के प्रत्येक क्षेत्र को शिक्षा अनुशासित करने का कार्य शिक्षा के माध्यम से ही किया जाता है।

आज आधिकारिक, जानकारी प्राप्त करने के लिए अनेक स्रोत व साधन उपलब्ध हैं जिनकी पहले कल्पना भी नहीं की गयी थी। जानकारियों एवं सूचनाओं के इस युग में आणविक तथा प्राकृतिक आपदाओं के विस्फोट तो हमारे सामने आये, किन्तु राष्ट्रीय परिवेश में अपने संसाधनों एवं सुसम्पन्न बौद्धिक क्षमताओं के बल पर हमें जिस क्षितिज तक राष्ट्र के ले जाना चाहिए, नहीं ले जा सके। राष्ट्र जीवन के जिन क्षेत्रों में कुछ मूल्य खोने पड़े हैं उनमें शिक्षा का क्षेत्र विशेष स्थिति एवं विशेष महत्त्व रखता है। मस्तिष्क और हृदय पर आधारित महात्मा गांधी की बुनियादी शिक्षा की धारणा को बिना उचित परीक्षण किये अस्वीकार कर दिया और उसकी जगह यूरोपीय पद्धति का अन्धानुकरण किया गया परिणामतः भारतीय समाज क्रमशः अपनी प्राचीन मूल्यपरक विचार विभूति से अनभिज्ञ और उदासीन होकर तर्कहीन रूढ़ियों और पश्चिम की चकाचौंध में खो गया। फलतः जिस, भारतीय, आध्यात्मिक चिन्तन की उपलब्धियों को विश्व हजारों वर्षो तक स्वीकार करता रहा, उसी ज्ञान, चिन्तन अध्ययन, अध्यापन और आध्यात्मिक चिन्तन रूप धरोहर को हमने भुला दिया है। हमारे यहाँ सत्यमेव जयते, अहिंसा परमोधर्मः तथा मातृ देवो भव पितृदेवो भव आदि की शिक्षा दी जाती थी जबकि वर्तमान समय में पश्चिम की चकाचौंध में एकाकी परिवारों को बढ़ावा मिला और माता पिता का आश्रय स्थान वृद्धाश्रम बन गये है।

मानवीय मूल्यों का निर्धारण सदैव समाज के व्यापक हित, सुरक्षा, व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए किया जाता है। मानवता वादी दृष्टि को रखते हुए व्यक्ति जब कोई कार्य करता है तो कभी किसी निसर्ग जन्य प्राणी को हानि पहुँचाने की सोच ही नहीं सकता है आविज्ञान शकुन्तल ने वन में प्रवेश करते ही राजा दुष्यन्त कहते हैं– ''विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम'' कालिदास राजा दुष्यन्त को आश्रम का मृग न मानने के लिये निर्देश देते हैं– ''भो भो राजन् आश्रममृगोऽयम् न हन्तव्यों न हन्तव्यो''। इसके आगे कालिदास दुष्यन्त से कहलाते है कि–

तत्साधुकृतसन्धानं प्रतिसहर सायकम्
आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तमनागसि

अर्थात् लक्ष्य पर साधे बाण को उतार लीजिये आपके शस्त्र लोगों की रक्षा के लिए होते हैं, अपराधहीन पर प्रहार के लिये नहीं, यहाँ कालिदास द्वारा यह शिक्षा दी गयी है कि निरपराधी को दण्डित करना कदाचित उचित नहीं है जबकि आज मानव का दृष्टिकोण स्वकेन्द्रित हो गया है अतः वह बिना किसी की परवाह किए अपनी स्वार्थ साधना की पूर्ति कर लेता है। आज मानव का दृष्टिकोण मानवतावादी न होकर मानववादी हो गया है इसी कारण राष्ट्र व्यक्ति, परिवार, विद्यालय समाज में ह्रास की स्थिति दृष्टिगोचर हो रही है।

बालक की सर्वप्रथम व सर्वश्रेष्ठ पाठशाला उसका परिवार होता है और माँ उसकी प्रथम सर्वश्रेष्ठ शिक्षिका होती है और बालक एक कोरे कागज के समान होता है बालमन पर माँ के व्यक्तित्व की एक अमिट छाप बनती है। हमारे शास्त्रों में भी माँ के द्वारा प्रदत्त शिक्षा की महत्ता का अनेक स्थलों पर वर्णन मिलता है। मनुस्मृति में कहा गया है– धन लेकर पढ़ाने वाले दस–दस उपाध्याय उतना नहीं पढ़ा सकते हैं जितना बिना धन लिए पढ़ाने वाला एक आचार्य पढ़ा सकता है और एक सौ आचार्य उतना नहीं पढ़ा सकते हैं जितना एक पिता पढ़ा सकता है। एक हजार पिता भी उतनी शिक्षा नहीं दे सकते, जितनी एक माँ बच्चे को शिक्षित कर सकती है, अर्थात्–

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतपिता
सहस्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते।।

माँ की इसी महत्ता को स्वीकारते हुए व्याकरण के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त पाणिनि ने कहा है कि–

''माता पितृर्दशगुणातिरिच्यते।।

अतः कह सकते है कि माँ के द्वारा प्रदत्त शिक्षा यदि मूल्यपरक होगी तो एक उच्च आदर्श वाला नागरिक तैयार होगा। बालक घर में रहकर ही माँ के सहायता, क्षमा, सच्चाई, परिश्रम और उदारता के आदर्शो को देखता है और इन्हीं मूल्यों और आदर्शो को अपने जीवन में उतार लेता है।

किन्तु आज का बच्चा सूचना क्रान्ति के इस युग में विभिन्न माध्यमों से शिक्षा प्राप्त करता है। वस्तुतः ये शिक्षा के साधन नित्य नवीन होने वाली खोजों की सूचनाऐं ही देते हैं और सूचनाओं का संग्रह मात्र शिक्षा नहीं होती है। सूचनाएँ ज्ञान की नींव नहीं हो सकती हैं। वे अधिक से अधिक वह सामग्री हो सकती है, जिसके द्वारा जानने वाला अपने ज्ञान की वृद्धि कर सकता है, वह जीविकोपार्जन करने योग्य अपने को बना सकता है किन्तु बालक को धैर्य, शान्ति, आत्म अनुशासन, आन्तरिक शक्ति, ज्ञान के मूल्यों से अवगत कराके उसका नैतिक और आध्यात्मिक विकास करने में ये साधन सक्षम नहीं हो सकते हैं।

अतः प्रथम सर्वोत्तम शिक्षिका माँ के बाद बच्चे के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास का नैतिक दायित्व शिक्षकों का होता है। बच्चे के बालमन पर सशक्त प्रभाव हमारे शिक्षकगण ही स्थापित कर सकते हैं। वे अपनी प्रत्येक क्रियाकलाप से बच्चे की आन्तरिक शक्तियों को विकसित कर मानवीय संवेदना से युक्त सच्चे अर्थो में एक पूर्ण मानव तैयार कर सकते हैं। तभी तो शिक्षक को भी हमारे शास्त्रों में देवता का स्थान दिया गया। 'आचार्य देवो भवः' कहकर उनको महिमा मण्डित किया गया है।

आज शिक्षा का व्यवसायीकरण कर दिया गया। जिस शिक्षा को मानव निर्माण की प्रक्रिया माना जाता है आज उसे धनार्जन का सर्वोत्तम साधन माना जाने लगा। शिक्षा प्रसार के नाम पर देश में एक बहुत बड़ी पढ़ी–लिखी मानवीय शक्ति तो एकत्र की जा रही है किन्तु गुणात्मक मूल्यों की ओर से ध्यान हटा लिया गया है। हमारा ध्यान सिर्फ कागजी डिग्रियाँ एकत्रित करने की ओर ही केन्द्रित रहा है। मानवीय मूल्यों को विकसित करने की ओर नहीं है। परिणामस्वरूप आज समाज में झूठ, छल, कपट, धोखेबाजी, स्वार्थरता भ्रष्टाचार, अनुत्तरदायित्व, की भावना, घृणा छोटी–छोटी बातों पर दूसरों का अपमान करना आदि को जीवन मूल्य बना लिया गया। आज सैद्धान्तिक शिक्षा तो दी जाती है किन्तु उसका व्यावहारिक पक्ष को भुला दिया जाता है। आज शिक्षा भौतिकता का ज्ञान प्रदान करने का तो माध्यम है, सामाजिक कर्तव्य और चरित्र–निर्माण में सक्षम नहीं है।

आज आवश्यकता है शिक्षा के प्राचीन भारतीय आदर्श को अपनाने की जिसमें कहा गया है कि ''सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात्–विद्या वह है जो मुक्ति का मार्ग दिखाती है। संसार की चर–अचर, जड़ चेतन, सजीव और निर्जीव सभी वस्तुओं से सामंजस्य स्थापित कर जब मानव की आन्तरिक शक्तियाँ पूर्ण विकसित होकर उच्चतम बिन्दु पर पहुँचती है तभी मानव सच्चे अर्थो में मानव बनता है।

अन्त में मैं यही कहूँगी कि आज आवश्यकता है एक ऐसी 'बुनियादी शिक्षा' की जिससे आज के इस ज्ञान–विज्ञान, तकनीक औद्योगिक और आणविक दृष्टि से अति–विकसित अवस्था में भी मानवीय संवेदना से युक्त एक मानव तैयार हो। जिससे सत्ता के किसी चर–अचर, और सजीव–निर्जीव को इससे खतरा उत्पन्न न हो तभी आज मानव के द्वारा किया जाने वाला विकास संविकास की श्रेणी में रखा जा सकता है।

संदर्भ ग्रन्थः

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास–आचार्य बलदेव उपाध्याय।
2. श्रीमद्भगवदगीता–गीता प्रेस गोरखपुर।
3. अविज्ञानशाकुन्तलम्–कालिदास।
4. मनुस्मृति–पण्डित श्री हरि गोविन्द शास्त्री।
5. ईशावास्योपनिषद्–टीकाकार डॉ0 विमला कर्णाटक।
6. अष्टाध्यायी–पाणिनि।